

Chapter तेरह

वराह भगवान् का प्राकट्य

श्रीशुक उवाच

निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप ।

भूयः पप्रच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; निशम्य—सुन कर; वाचम्—बातें; वदतः—बोलते हुए; मुनेः—मैत्रेय मुनि का; पुण्य-तमाम्—अत्यन्त पुण्यमय; नृप—हे राजा; भूयः—तब फिर; पप्रच्छ—पूछा; कौरव्यः—कुरुओं में सर्वश्रेष्ठ (विदुर); वासुदेव-कथा—भगवान् वासुदेव विषयक कथाएँ; आदतः—जो इस तरह सादर पूजता है।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, मैत्रेय मुनि से इन समस्त पुण्यतम कथाओं को सुनने के बाद विदुर ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कथाओं के विषय में और अधिक पूछताछ की, क्योंकि इनका आदरपूर्वक सुनना उन्हें पसन्द था।

तात्पर्य : आदतः शब्द महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह संकेत देता है कि विदुर में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य सन्देश सुनने के प्रति स्वाभाविक झुकाव था। वे इन कथाओं को लगातार सुनते रहकर कभी भी पूरी तरह तुष्ट नहीं होते थे। वे अधिकाधिक सुनना चाह रहे थे जिससे वे दिव्य सन्देश द्वारा अधिकाधिक कृतार्थ हो सकें।

विदुर उवाच

स वै स्वायम्भुवः सम्राट्प्रियः पुत्रः स्वयम्भुवः ।

प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ॥ २ ॥

शब्दार्थ

विदुरः उवाच—विदुर ने कहा; सः—वह; वै—सरलता से; स्वायम्भुवः—स्वायम्भुव मनु; सम्राट्—समस्त राजाओं के राजा; प्रियः—प्रिय; पुत्रः—पुत्र; स्वयम्भुवः—ब्रह्मा का; प्रतिलभ्य—प्राप्त करके; प्रियाम्—अत्यन्त प्रिय; पत्नीम्—पत्नी को; किम्—क्या; चकार—किया; ततः—तत्पश्चात्; मुने—हे मुनि।

विदुर ने कहा : हे मुनि, ब्रह्मा के प्रिय पुत्र स्वायम्भुव ने अपनी अतीव प्रिय पत्नी को पाने के बाद क्या किया ?

चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम ।

ब्रूहि मे श्रद्धधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

चरितम्—चरित्र; तस्य—उसका; राजर्षेः—ऋषितुल्य राजा का; आदि—राजस्य—आदि राजा का; सत्तम—हे अति पवित्र; ब्रूहि—कृपया कहें; मे—मुझसे; श्रद्धधानाय—प्राप्त करने के लिए जो इच्छुक है उसे; विष्वक्सेन—भगवान् का; आश्रयः—जिसने शरण ले रखी है; हि—निश्चय ही; असौ—वह राजा।

हे पुण्यात्मा श्रेष्ठ, राजाओं का आदि राजा (मनु) भगवान् हरि का महान् भक्त था, अतएव उसके शुद्ध चरित्र तथा कार्यकलाप सुनने योग्य हैं। कृपया उनका वर्णन करें। मैं सुनने के लिए अतीव उत्सुक हूँ।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्तों की दिव्य कथाओं से ओतप्रोत है। परम जगत में भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्त में गुणात्मक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं। इसलिए भगवान् की कथाओं के श्रवण तथा शुद्ध भक्त के चरित्र तथा कार्यकलापों के श्रवण का फल एक ही होता है, अर्थात् इनसे भक्ति का विकास होता है।

श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य

नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ।

तत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्द-

पादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

श्रुतस्य—ऐसे व्यक्तियों का जो सुन रहे हों; पुंसाम्—ऐसे पुरुषों का; सुचिर—दीर्घकाल तक; श्रमस्य—कठिन श्रम करते हुए; ननु—निश्चय ही; अञ्जसा—विस्तार से; सूरिभिः—शुद्ध भक्तों द्वारा; ईडितः—व्याख्या किया गया; अर्थः—कथन; तत्—वह; तत्—वह; गुण—दिव्य गुण; अनुश्रवणम्—सोचते हुए; मुकुन्द—मुक्तिदाता भगवान् का; पाद-अरविन्दम्—चरणकमल; हृदयेषु—हृदय के भीतर; येषाम्—जिनके।

जो लोग अत्यन्त श्रमपूर्वक तथा दीर्घकाल तक गुरु से श्रवण करते हैं उन्हें शुद्धभक्तों के चरित्र तथा कार्यकलापों के विषय में शुद्धभक्तों के मुख से ही सुनना चाहिए। शुद्ध भक्त अपने हृदयों के भीतर सदैव उन भगवान् के चरणकमलों का चिन्तन करते हैं, जो अपने भक्तों को मोक्ष प्रदान करने वाले हैं।

तात्पर्य : दिव्य छात्र वे हैं, जो प्रामाणिक गुरु से वेदों को सुन कर प्रशिक्षित बनने के लिए कठिन तपस्या करते हैं। उन्हें न केवल भगवान् के कार्यकलापों के बारे में सुनना चाहिए, अपितु उन भक्तों के भी दिव्य गुणों के विषय में सुनना चाहिए जो अपने हृदय के भीतर निरन्तर भगवान् के चरणकमलों का चिन्तन करते रहते हैं। भगवान् के शुद्ध भक्त को क्षण भर के लिए भी भगवान् के चरणकमलों से

विलग नहीं किया जा सकता। निस्सन्देह, भगवान् सदैव समस्त प्राणियों के हृदयों के भीतर रहते हैं, किन्तु वे इसके विषय में नहीं जान पाते, क्योंकि वे मोहिनी भौतिक शक्ति द्वारा ठगे जाते हैं। तथापि भक्त भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करते हैं इसलिए वे अपने हृदय के भीतर भगवान् के चरणकमलों का सदैव दर्शन कर सकते हैं। भगवान् के ऐसे शुद्ध भक्त भगवान् के ही तुल्य गौरवशाली होते हैं; वस्तुतः भगवान् उन्हें अपनी अपेक्षा अधिक पूजनीय मानने की संस्तुति करते हैं। भक्त की पूजा भगवान् की पूजा से अधिक शक्तिमान है। इसलिए दिव्य छात्रों का कर्तव्य है कि वे शुद्ध भक्तों के बारे में उसी रूप में सुनें जिस तरह भगवान् के वैसे ही भक्तों द्वारा बतलाया गया हो, क्योंकि कोई तब तक भगवान् या उनके भक्त के विषय में कुछ नहीं बतला सकता जब तक वह स्वयं शुद्ध भक्त न हो।

श्रीशुक उवाच
इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं
सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ।
प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां
प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; ब्रुवाणम्—बोलते हुए; विदुरम्—विदुर को; विनीतम्—अतीव नम्र; सहस्र-शीर्ष्णः—भगवान् कृष्ण; चरण—चरणकमल; उपधानम्—तकिया; प्रहृष्ट-रोमा—आनन्द से जिसके रोम खड़े हो गये हों; भगवत्—भगवान् के सम्बन्ध में; कथायाम्—शब्दों में; प्रणीयमानः—ऐसे आत्मा द्वारा प्रभावित हो कर; मुनिः—मुनि ने; अभ्यचष्ट—बोलने का प्रयास किया।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् कृष्ण विदुर की गोद में अपना चरणकमल रख कर प्रसन्न थे, क्योंकि विदुर अत्यन्त विनीत तथा भद्र थे। मैत्रेय मुनि विदुर के शब्दों से अति प्रसन्न थे और अपनी आत्मा से प्रभावित होकर उन्होंने बोलने का प्रयास किया।

तात्पर्य : यहाँ सहस्र-शीर्ष्णः शब्द अत्यन्त सार्थक है। विविध शक्तियों तथा कार्यकलापों एवं अद्भुत मस्तिष्क वाला व्यक्ति सहस्र-शीर्ष्णः कहलाता है। यह योग्यता एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण पर लागू होती है, अन्य किसी पर नहीं। भगवान् ने कभी प्रसन्न होकर विदुर के घर पर भोजन किया था और विश्राम करते समय उन्होंने विदुर की गोद में अपने चरणकमल रखे थे। मैत्रेय विदुर के अहो-भाग्य को सोचकर प्रेरित हुए। उन्हें रोमांच हो गया और प्रसन्न होकर उन्होंने बड़े ही हर्ष के साथ भगवान् की कथाओं का वर्णन शुरू किया।

मैत्रेय उवाच

यदा स्वभार्यया सार्धं जातः स्वायम्भुवो मनुः ।

प्राञ्जलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; यदा—जब; स्व-भार्यया—अपनी पत्नी के; सार्धम्—साथ में; जातः—प्रकट हुआ; स्वायम्भुवः—स्वायम्भुव मनु; मनुः—मानवजाति का पिता; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़े; प्रणतः—नमस्कार करके; च—भी; इदम्—यह; वेद-गर्भम्—वैदिक विद्या के आगार को; अभाषत—सम्बोधित किया ।

मैत्रेय मुनि ने विदुर से कहा : मानवजाति के पिता मनु अपनी पत्नी समेत अपने प्राकट्य के बाद वेदविद्या के आगार ब्रह्मा को नमस्कार करके तथा हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोले ।

त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृत्तदः पिता ।

तथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; एकः—एक; सर्व—समस्त; भूतानाम्—जीवों के; जन्म-कृत्—जनक; वृत्ति-दः—जीविका का साधन; पिता—पिता; तथा अपि—तो भी; नः—हम; प्रजानाम्—उत्पन्न हुए सबों का; ते—तुम्हारी; शुश्रूषा—सेवा; केन—कैसे; वा—अथवा; भवेत्—सम्भव हो सकती है ।

आप सारे जीवों के पिता तथा उनकी जीविका के स्रोत हैं, क्योंकि वे सभी आपसे उत्पन्न हुए हैं । कृपा करके हमें आदेश दें कि हम आपकी सेवा किस तरह कर सकते हैं ।

तात्पर्य : पुत्र का कर्तव्य है कि वह अपने पिता को केवल अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में इस्तेमाल न करे, अपितु जब वह बड़ा हो जाय तो वह उसकी सेवा भी करे । यही ब्रह्मा के समय से सृष्टि का नियम चला आ रहा है । पिता का कर्तव्य है कि जब तक पुत्र बड़ा न हो जाय उसका पालनपोषण करे और जब पुत्र बड़ा हो जाय तो पुत्र का कर्तव्य है कि वह पिता की सेवा करे ।

तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु ।

यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; विधेहि—आदेश दें; नमः—मेरा नमस्कार; तुभ्यम्—तुमको; कर्मसु—कार्यों में; ईड्य—हे पूज्य; आत्म-शक्तिषु—हमारी कार्य क्षमता के अन्तर्गत; यत्—जो; कृत्वा—करके; इह—इस जगत में; यशः—यश; विष्वक्—सर्वत्र; अमुत्र—अगले जगत में; च—तथा; भवेत्—इसे होना चाहिए; गतिः—प्रगति ।

हे आराध्य, आप हमें हमारी कार्यक्षमता के अन्तर्गत कार्य करने के लिए अपना आदेश दें

जिससे हम इस जीवन में यश के लिए तथा अगले जीवन में प्रगति के लिए उसका पालन कर सकें।

तात्पर्य : ब्रह्माजी तो सीधे भगवान् से वैदिक ज्ञान प्राप्त करने वाले हैं और ब्रह्मा की शिष्य-परम्परा में जिस किसी को उनका निहित कार्य सौंपा जाता है, उसे इस जीवन में यश तथा अगले जीवन में मोक्ष प्राप्त होना निश्चित है। ब्रह्मा से चलने वाली शिष्य-परम्परा *ब्रह्मसम्प्रदाय* कहलाती है और वह इस प्रकार चलती है—ब्रह्मा, नारद, व्यास, मध्व मुनि (पूर्णप्रज्ञ), पद्मनाभ, नृहरि, माधव, अक्षोभ्य, जयतीर्थ, ज्ञानसिन्धु, दयानिधि, विद्यानिधि, राजेन्द्र, जयधर्म, पुरुषोत्तम, ब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ, लक्ष्मीपति, माधवेन्द्रपुरी, ईश्वरपुरी, श्री चैतन्य महाप्रभु, स्वरूप दामोदर तथा श्रीरूप गोस्वामी एवं अन्यजन, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी, कृष्णदास गोस्वामी, नरोत्तमदास ठाकुर, विश्वनाथ चक्रवर्ती, जगन्नाथ दास बाबाजी, भक्ति विनोद ठाकुर, गौरकिशोर दास बाबाजी, श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती, श्री ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी।

ब्रह्मा से चलने वाली शिष्य-परम्परा की यह धारा आध्यात्मिक है, जबकि मनु से चलने वाली वंश परम्परा भौतिक है, किन्तु दोनों ही कृष्णभावनामृत के एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं।

ब्रह्मोवाच

प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर ।
यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनार्पितम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा उवाच—ब्रह्मा ने कहा; प्रीतः—प्रसन्न; तुभ्यम्—तुम को; अहम्—मैं; तात—हे पुत्र; स्वस्ति—कल्याण; स्तात्—हो; वाम्—तुम दोनों को; क्षिति—ईश्वर—हे संसार के स्वामी; यत्—क्योंकि; निर्व्यलीकेन—बिना भेदभाव के; हृदा—हृदय से; शाधि—आदेश दीजिये; मा—मुझको; इति—इस प्रकार; आत्मना—आत्मा से; अर्पितम्—शरणागत।

ब्रह्माजी ने कहा, हे प्रिय पुत्र, हे जगत् के स्वामी, मैं तुम से अति प्रसन्न हूँ और तुम्हारे तथा तुम्हारी पत्नी दोनों ही के कल्याण की कामना करता हूँ। तुमने मेरे आदेशों के लिए अपने हृदय से बिना सोचे विचारे अपने आपको मेरे शरणागत कर लिया है।

तात्पर्य : पिता तथा पुत्र का सम्बन्ध अतीव उदात्त होता है। पिता स्वभावतः पुत्र का शुभेच्छु होता है और अपने पुत्र के जीवन की प्रगति में सहायता करने के लिए सदैव उद्यत रहता है। किन्तु पिता की शुभेच्छा के बावजूद पुत्र कभी कभी निजी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करके विपथ हो जाता है। हर जीव में

चाहे वह कितना छोटा या बड़ा क्यों न हो, स्वतंत्रता की रुचि होती है। यदि पुत्र मुक्त भाव से पिता के मार्गदर्शन पर चलना चाहता है, तो पिता सभी तरह से उसे आदेश देने तथा उसका मार्गदर्शन करने के लिए दसगुना अधिक उत्सुक रहता है। यहाँ पर ब्रह्मा तथा मनु के व्यवहार में पिता-पुत्र का जो सम्बन्ध प्रदर्शित हो रहा है, वह सर्वोत्तम है। पिता तथा पुत्र दोनों ही सुयोग्य हैं और समस्त मानव जाति को उनके आदर्श का अनुसरण करना चाहिए। पुत्र मनु ने अपने पिता ब्रह्मा से मुक्तभाव से आदेश देने के लिए कहा और पिता जो वैदिक ज्ञान से पूर्ण थे, इसे देने के लिए अति प्रसन्न थे। मनुष्य को मानवजाति के पिता के इस उदाहरण का दृढ़ता से पालन करना चाहिए, क्योंकि इससे पिता तथा पुत्र के सम्बन्ध उन्नत बनेंगे।

एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ ।

शक्त्याप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

एतावती—ठीक इसी तरह; आत्मजैः—सन्तान द्वारा; वीर—हे वीर; कार्या—सम्पन्न किया जाना चाहिए; हि—निश्चय ही; अपचितिः—पूजा; गुरौ—गुरुजन को; शक्त्या—पूरी क्षमता से; अप्रमत्तैः—विवेकवान द्वारा; गृह्येत—स्वीकार किया जाना चाहिए; स-आदरम्—अतीव हर्ष के साथ; गत-मत्सरैः—ईर्ष्या की सीमा से परे रहने वालों के द्वारा।

हे वीर, तुम्हारा उदाहरण पिता-पुत्र सम्बन्ध के सर्वथा उपयुक्त है। बड़ों की इस तरह की पूजा अपेक्षित है। जो ईर्ष्या की सीमा के परे है और विवेकी है, वह अपने पिता के आदेश को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता है और अपने पूरी सामर्थ्य से उसे सम्पन्न करता है।

तात्पर्य : जब ब्रह्मा के पहले चार पुत्रों—सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत्कुमार—ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करने से इनकार कर दिया तो ब्रह्मा लज्जित हुए और उनका क्रोध रुद्र के रूप में प्रकट हुआ। ब्रह्मा इस घटना को भूले नहीं थे, अतएव मनु स्वायम्भुव द्वारा आज्ञापालन किये जाने से वे अतीव उत्साहित हुए। भौतिक दृष्टि से चारों मुनियों द्वारा अपने पिता के आदेश का उल्लंघन निश्चय ही निन्दनीय था, किन्तु क्योंकि यह आज्ञोल्लंघन एक उच्चतर उद्देश्य के निमित्त था, वे आज्ञोल्लंघन की प्रतिक्रिया से मुक्त थे। भौतिक कारणों से अपने पिता का जो आज्ञोल्लंघन करते हैं उन्हें ऐसे आज्ञोल्लंघन के लिए निश्चय ही, अनुशासनिक मूल्य चुकाना पड़ता है। मनु द्वारा अपने पिता का भौतिक कारणों से आज्ञापालन निश्चय ही ईर्ष्यारहित था। भौतिक जगत में सामान्य जनों को मनु के इस

उदाहरण का अनुसरण करना अनिवार्य है।

स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः ।

उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—इसलिए वह आज्ञाकारी पुत्र; त्वम्—तुम जैसे; अस्याम्—उसमें; अपत्यानि—सन्तानें; सदृशानि—समानरूप से योग्य; आत्मनः—तुम्हारी; गुणैः—गुणों से; उत्पाद्य—उत्पन्न किये जाकर; शास—शासन करते हैं; धर्मेण—भक्ति के नियमों के साथ; गाम्—जगत; यज्ञैः—यज्ञों से; पुरुषम्—भगवान् की; यज—पूजा करो।

चूँकि तुम मेरे अत्यन्त आज्ञाकारी पुत्र हो इसलिए मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम अपनी पत्नी के गर्भ से अपने ही समान योग्य सन्तानें उत्पन्न करो। तुम पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति के सिद्धान्तों का पालन करते हुए सारे जगत पर शासन करो और इस तरह यज्ञ सम्पन्न करके भगवान् की पूजा करो।

तात्पर्य : यहाँ पर ब्रह्मा द्वारा भौतिक सृष्टि के उद्देश्य का स्पष्ट वर्णन हुआ है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अपनी पत्नी के गर्भ से उत्तम सन्तानें उत्पन्न करे। यह कार्य भक्तिपूर्वक भगवान् की पूजा करने के लिए यज्ञ के समान है। *विष्णु पुराण* (३.८.९) में कहा गया है—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।

विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत् ततोषकारणम् ॥

“वर्ण तथा आश्रम के नियमों का सही ढंग से पालन करके मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा कर सकता है। वर्णाश्रम प्रणाली के नियमों की सम्पन्नता द्वारा भगवान् को तुष्ट करने का कोई अन्य विकल्प नहीं है।”

विष्णु पूजा मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। जिन्हें विवाहित जीवन में इन्द्रिय भोग की स्वीकृति मिलती है उन्हें भगवान् विष्णु को तुष्ट करने का उत्तरदायित्व भी ग्रहण करना चाहिए। उसके लिए पहली सीढ़ी वर्णाश्रम धर्म प्रणाली है। वर्णाश्रम धर्म विष्णु पूजा में प्रगति करने का व्यवस्थित संस्थान है। किन्तु यदि कोई सीधे ही भगवान् की भक्ति करता है, तो उसे वर्णाश्रम धर्म की अनुशासनिक प्रणाली में पड़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती। ब्रह्मा के अन्य पुत्र कुमारगण सीधे भक्ति में लग गये, अतएव उन्हें वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्तों का पालन करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप ।
भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशोऽनुतुष्यति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

परम्—सबसे बड़ी; शुश्रूषणम्—भक्ति; मह्यम्—मेरे प्रति; स्यात्—होनी चाहिए; प्रजा—भौतिक जगत में उत्पन्न जीव; रक्षया—बिगड़ने से बचाकर; नृप—हे राजा; भगवान्—भगवान्; ते—तुम्हारे साथ; प्रजा-भर्तुः—जीवों के रक्षक के साथ; हृषीकेशः—इन्द्रियों के स्वामी; अनुतुष्यति—तुष्ट होता है।

हे राजन्, यदि तुम भौतिक जगत में जीवों को उचित सुरक्षा प्रदान कर सको तो मेरे प्रति वह सर्वोत्तम सेवा होगी। जब परमेश्वर तुम्हें बद्धजीवों के उत्तम रक्षक के रूप में देखेंगे तो इन्द्रियों के स्वामी निश्चय ही तुम पर अतीव प्रसन्न होंगे।

तात्पर्य : सम्पूर्ण प्रशासनिक प्रणाली भगवद्धाम् वापस जाने के लिए व्यवस्थित की जाती है। ब्रह्माजी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रतिनिधि हैं और मनु ब्रह्मा के प्रतिनिधि हैं। इसी तरह ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोकों के अन्य सारे राजा मनु के प्रतिनिधि हैं। सम्पूर्ण मानव समाज के लिए मनुसंहिता विधि ग्रन्थ है, जो सारे कार्यों को भगवान् की दिव्य सेवा की ओर निर्देशित करता है। इसलिए प्रत्येक राजा को यह जानना चाहिए कि प्रशासन में उसका उत्तरदायित्व नागरिकों से केवल कर वसूल करना ही नहीं है, अपितु स्वयं यह देखना है कि उसके अधीन सारे नागरिकों को विष्णु पूजा का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। हर व्यक्ति को विष्णु पूजा की शिक्षा दी जानी चाहिए और इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश की भक्ति में लगाया जाना चाहिए। बद्धजीव अपनी भौतिक इच्छाओं को तुष्ट करने के लिए नहीं हैं अपितु भगवान् हृषीकेश की इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए हैं। सम्पूर्ण प्रशासनिक प्रणाली का यही उद्देश्य है। जो ब्रह्मा के कथन द्वारा उद्धाटित इस रहस्य को जानता है, वही पूर्ण प्रशासनिक प्रमुख है। जो इसे नहीं जानता वह दिखावटी प्रशासक है। नागरिकों को भगवद्भक्ति में प्रशिक्षित करने से राज्य का प्रमुख अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो सकता है, अन्यथा वह उसे सौंपे हुए दूभर कार्य को करने में विफल होगा और इस तरह वह परम अधिकारी द्वारा दण्डनीय होगा। प्रशासनिक कर्तव्य निबाहने का इसके सिवा कोई अन्य विकल्प नहीं है।

येषां न तुष्टो भगवान्यज्ञलिङ्गो जनार्दनः ।
तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादतः स्वयम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

येषाम्—उनका जिनके साथ; न—कभी नहीं; तुष्टः—तुष्ट; भगवान्—भगवान्; यज्ञ-लिङ्गः—यज्ञ का स्वरूप; जनार्दनः—भगवान् कृष्ण या विष्णुतत्त्व; तेषाम्—उनका; श्रमः—श्रम; हि—निश्चय ही; अपार्थाय—बिना लाभ के; यत्—क्योंकि; आत्मा—परमात्मा; न—नहीं; आहतः—सम्मानित; स्वयम्—स्वयं।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जनार्दन (कृष्ण) ही समस्त यज्ञ फलों को स्वीकार करने वाले हैं। यदि वे तुष्ट नहीं होते तो प्रगति के लिए किया गया मनुष्य का श्रम व्यर्थ है। वे चरम आत्मा हैं, अतएव जो व्यक्ति उन्हें तुष्ट नहीं करता वह निश्चय ही अपने ही हितों की उपेक्षा करता है।

तात्पर्य : ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड के मामलों का सर्वोच्च अध्यक्ष नियुक्त किया गया है और वे भौतिक जगत के मामलों के संचालन हेतु मनु तथा अन्यो को नियुक्त करते हैं, किन्तु यह सारा प्रदर्शन परमेश्वर की तुष्टि के हेतु है। ब्रह्माजी जानते हैं कि भगवान् को कैसे तुष्ट किया जाता है। इसी तरह ब्रह्मा की कार्य योजना में लगे लोग भी जानते हैं कि भगवान् को किस तरह तुष्ट करना चाहिए। भगवान् भक्तियोग द्वारा तुष्ट किये जाते हैं जिसके अन्तर्गत श्रवण, कीर्तन, इत्यादि नौ विधियाँ आती हैं। यह तो मनुष्य के अपने हित में है कि नियत भक्ति सम्पन्न की जाय और जो भी इस विधि की उपेक्षा करता है, वह अपने ही हित की उपेक्षा करता है। हर व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करना चाहता है, किन्तु इन्द्रियों से भी ऊपर मन है और मन के ऊपर बुद्धि तथा बुद्धि के ऊपर व्यष्टि आत्मा तथा व्यष्टि आत्मा के ऊपर परमात्मा है। परमात्मा के भी ऊपर पुरुषोत्तम भगवान् या विष्णु तत्त्व है। आदि भगवान् तथा सभी कारणों के कारण श्रीकृष्ण हैं। सिद्धिसेवा की सम्पूर्ण विधि उन भगवान् कृष्ण की दिव्य इन्द्रियों की तुष्टि हेतु सेवा करना है, जो जनार्दन कहलाते हैं।

मनुरुवाच

आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन ।

स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

मनुः उवाच—श्री मनु ने कहा; आदेशे—आदेश के अन्तर्गत; अहम्—मैं; भगवतः—शक्तिशाली आपका; वर्तेय—रुकूँगा; अमीव-सूदन—हे समस्त पापों के संहारक; स्थानम्—स्थान; तु—लेकिन; इह—इस जगत में; अनुजानीहि—कृपया मुझे बतलाइये; प्रजानाम्—मुझसे उत्पन्न जीवधारियों का; मम—मेरा; च—भी; प्रभो—हे प्रभु।

श्री मनु ने कहा : हे सर्वशक्तिमान प्रभु, हे समस्त पापों के संहर्ता, मैं आपके आदेशों का पालन करूँगा। कृपया मुझे मेरा तथा मुझसे उत्पन्न जीवों के बसने के लिए स्थान बतलाएँ।

यदोकः सर्वभूतानां मही मग्ना महाम्भसि ।
अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यत्—क्योंकि; ओकः—वासस्थान; सर्व—सभी के लिए; भूतानाम्—जीवों के लिए; मही—पृथ्वी; मग्ना—डूबी हुई; महा-
अम्भसि—विशाल जल में; अस्याः—इसके; उद्धरणे—उठाने में; यत्नः—प्रयास; देव—हे देवताओं के स्वामी; देव्याः—इस
पृथ्वी का; विधीयताम्—कराएँ।

हे देवताओं के स्वामी, विशाल जल में डूबी हुई पृथ्वी को ऊपर उठाने का प्रयास करें,
क्योंकि यह सारे जीवों का वासस्थान है। यह आपके प्रयास तथा भगवान् की कृपा से ही सम्भव
है।

तात्पर्य : यहाँ पर उल्लिखित विशाल जलागार गर्भोदक सागर है, जो ब्रह्माण्ड के आधे भाग में
भरा हुआ है।

मैत्रेय उवाच

परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथा सन्नामवेक्ष्य गाम् ।
कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—श्री मैत्रेय मुनि ने कहा; परमेष्ठी—ब्रह्मा; तु—भी; अपाम्—जल के; मध्ये—भीतर; तथा—इस प्रकार;
सन्नाम्—स्थित; अवेक्ष्य—देखकर; गाम्—पृथ्वी को; कथम्—कैसे; एनाम्—यह; समुन्नेष्ये—मैं उठा लूँगा; इति—इस प्रकार;
दध्यौ—ध्यान दिया; धिया—बुद्धि से; चिरम्—दीर्घ काल तक।

श्री मैत्रेय ने कहा : इस प्रकार पृथ्वी को जल में डूबी हुई देखकर ब्रह्मा दीर्घकाल तक
सोचते रहे कि इसे किस प्रकार उठाया जा सकता है।

तात्पर्य : जीव गोस्वामी के अनुसार यहाँ पर जिन कथाओं का उद्धाटन किया गया है वे विभिन्न
कल्पों की हैं। वर्तमान कथाएँ श्वेत वराह कल्प की हैं और चाक्षुष कल्प की कथाओं को भी इसी
अध्याय में बतलाया जायेगा।

सृजतो मे क्षितिर्वाभिः प्लाव्यमाना रसां गता
अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ।
यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सृजतः—सृजन करते समय; मे—मेरा; क्षितिः—पृथ्वी; वाभिः—जल के द्वारा; प्लाव्यमाना—आप्लावित की गई; रसां—जल
की गहराई; गता—नीचे गया हुआ; अथ—इसलिए; अत्र—इस मामले में; किम्—क्या; अनुष्ठेयम्—क्या प्रयास किया जाना

चाहिए; अस्माभिः—हमारे द्वारा; सर्ग—सृष्टि में; योजितैः—लगे हुए; यस्य—जिसका; अहम्—मैं; हृदयात्—हृदय से; आसम्—उत्पन्न; सः—वह; ईशः—परमेश्वर; विदधातु—निर्देश कर सकते हैं; मे—मुझको।

सृजतो मे क्षितिर्वाभिः प्लाव्यमाना रसां गता
अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ।
यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सृजतः—सृजन करते समय; मे—मेरा; क्षितिः—पृथ्वी; वाभिः—जल के द्वारा; प्लाव्यमाना—आप्लावित की गई; रसाम्—जल की गहराई; गता—नीचे गया हुआ; अथ—इसलिए; अत्र—इस मामले में; किम्—क्या; अनुष्ठेयम्—क्या प्रयास किया जाना चाहिए; अस्माभिः—हमारे द्वारा; सर्ग—सृष्टि में; योजितैः—लगे हुए; यस्य—जिसका; अहम्—मैं; हृदयात्—हृदय से; आसम्—उत्पन्न; सः—वह; ईशः—परमेश्वर; विदधातु—निर्देश कर सकते हैं; मे—मुझको।

ब्रह्मा ने सोचा : जब मैं सृजन कार्य में लगा हुआ था, तो पृथ्वी बाढ़ से आप्लावित हो गई और समुद्र के गर्त में चली गई। हम लोग जो सृजन के इस कार्य में लगे हैं भला कर ही क्या सकते हैं? सर्वोत्तम यही होगा कि सर्वशक्तिमान हमारा निर्देशन करें।

तात्पर्य : कभी-कभी भगवद्भक्त जो कि विश्वसनीय सेवक होते हैं अपना अपना कर्तव्य निभाते समय विमूढ़ हो जाते हैं, किन्तु वे हतोत्साहित कभी नहीं होते। उन्हें भगवान् में पूर्ण श्रद्धा होती है और भगवान् भक्तों के कर्तव्य पालन की उन्नति के मार्ग को सुगम बनाते हैं।

इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसानघ ।
वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अभिध्यायतः—सोचते हुए; नासा-विवरात्—नथुनों से; सहसा—एकाएक; अनघ—हे निष्पाप; वराह-तोकः—वराह का लघुरूप (सूअर); निरगात्—बाहर आया; अङ्गुष्ठ—अँगूठे का ऊपरी हिस्सा; परिमाणकः—माप वाला।

हे निष्पाप विदुर, जब ब्रह्माजी विचारमग्न थे तो उनके नथुने से सहसा एक सूअर (वराह) का लघुरूप बाहर निकल आया। इस प्राणी की माप अँगूठे के ऊपरी हिस्से से अधिक नहीं थी।

तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत ।
गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; अभिपश्यतः—इस प्रकार देखते हुए; ख-स्थः—आकाश में स्थित; क्षणेन—सहसा; किल—निश्चय ही; भारत—हे भरतवंशी; गज-मात्रः—हाथी के समान; प्रववृधे—भलीभाँति विस्तार किया; तत्—वह; अद्भुतम्—असामान्य; अभूत्—बदल गया; महत्—विराट शरीर में।

हे भरतवंशी, तब ब्रह्मा के देखते ही देखते वह वराह विशाल काय हाथी जैसा अद्भुत

विराट स्वरूप धारण करके आकाश में स्थित हो गया ।

मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह ।

दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मरीचि—मरीचि मुनि; प्रमुखैः—इत्यादि; विप्रैः—सारे ब्राह्मणों; कुमारैः—चारों कुमारों सहित; मनुना—तथा मनु; सह—के साथ; दृष्ट्वा—देख कर; तत्—वह; सौकरम्—सूकर जैसा; रूपम्—स्वरूप; तर्कयाम् आस—परस्पर तर्क-वितर्क किया; चित्रधा—विविध प्रकारों से ।

आकाश में अद्भुत सूकर जैसा रूप देखने से आश्चर्यचकित ब्रह्माजी मरीचि जैसे महान् ब्राह्मणों तथा चारों कुमारों एवं मनु के साथ अनेक प्रकार से तर्क-वितर्क करने लगे ।

किमेतत्सूकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् ।

अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; एतत्—यह; सूकर—सूकर के; व्याजम्—बहाने से; सत्त्वं—जीव; दिव्यम्—असामान्य; अवस्थितम्—स्थित; अहो बत—ओह, यह है; आश्चर्यम्—अत्यन्त अद्भुत; इदम्—यह; नासायाः—नाक से; मे—मेरी; विनिःसृतम्—बाहर आया ।

क्या सूकर के बहाने से यह कोई असामान्य व्यक्तित्व आया है? यह अति आश्चर्यप्रद है कि वह मेरी नाक से निकला है ।

दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः ।

अपि स्वद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

दृष्टः—अभी-अभी देखा हुआ; अङ्गुष्ठ—अँगूठे का; शिरः—सिरा; मात्रः—केवल; क्षणात्—तुरन्त; गण्ड-शिला—विशाल पत्थर; समः—सदृश; अपि स्वित्—क्या; भगवान्—भगवान्; एषः—यह; यज्ञः—विष्णु; मे—मेरा; खेदयन्—खिन्न; मनः—मन ।

प्रारम्भ में यह सूकर अँगूठे के सिरे से बड़ा न था, किन्तु क्षण भर में वह शिला के समान विशाल बन गया । मेरा मन विक्षुब्ध है । क्या वह पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु हैं?

तात्पर्य : चूँकि ब्रह्माजी इस ब्रह्माण्ड के सर्वोपरि पुरुष हैं और इसके पूर्व उन्होंने ऐसा रूप नहीं देखा था, अतएव वे अनुमान नहीं लगा पाये कि सूकर का प्राकट्य विष्णु का अवतार था । भगवान् के अवतार के असामान्य लक्षण ब्रह्मा तक के मन को मोहित कर सकते हैं ।

इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः ।
भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; मीमांसतः—विचार-विमर्श करते; तस्य—उस; ब्रह्मणः—ब्रह्मा के; सह—साथ-साथ; सूनुभिः—उनके पुत्रगण; भगवान्—परमेश्वर; यज्ञ—भगवान् विष्णु ने; पुरुषः—सर्वश्रेष्ठ पुरुष; जगर्ज—गर्जना की; अग-इन्द्र—विशाल पर्वत; सन्निभः—सदृश ।

जब ब्रह्माजी अपने पुत्रों के साथ विचार-विमर्श कर रहे थे तो पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने विशाल पर्वत के समान गम्भीर गर्जना की ।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि विशाल पर्वतों में भी उनकी गर्जना शक्ति होती है, क्योंकि वे भी जीव हैं । ध्वनि गर्जन की गहनता भौतिक शरीर के आकार के अनुपात में होती है । अभी ब्रह्माजी भगवान् के शूकर अवतार के प्रकट होने के विषय में अनुमान लगा ही रहे थे कि भगवान् ने अपनी गम्भीर वाणी द्वारा गर्जना करके ब्रह्मा के अनुमान की पुष्टि कर दी ।

ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् ।
स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्माणम्—ब्रह्मा को; हर्षयाम् आस—जीवन्त कर दिया; हरिः—भगवान् ने; तान्—वे उन सबों को; च—भी; द्विज-उत्तमान्—अति उच्च ब्राह्मणों को; स्व-गर्जितेन—अपनी असाधारण वाणी से; ककुभः—सारी दिशाएँ; प्रतिस्वनयता—प्रतिध्वनित हो उठीं; विभुः—सर्वशक्तिमान ।

सर्वशक्तिमान भगवान् ने पुनः असाधारण वाणी से ऐसी गर्जना कर के ब्रह्मा तथा अन्य उच्चस्थ ब्राह्मणों को जीवन्त कर दिया, जिससे सारी दिशाओं में गूँज उठीं ।

तात्पर्य : ब्रह्मा तथा अन्य उत्तम ब्राह्मण, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जानते हैं, भगवान् को नाना अवतारों में से किसी एक में प्रकट होते देखकर जीवन्त हो उठते हैं । पर्वतसदृश शूकर के रूप में विष्णु के अद्भुत तथा विराट अवतार के प्रकट होने पर उनमें किसी प्रकार का भय उत्पन्न नहीं हुआ यद्यपि भगवान् की गूँजती वाणी कोलाहलपूर्ण थी और सभी दिशाओं में भयानक रूप से प्रतिध्वनित हुई, मानो उन असुरों के लिए खुली धमकी हो जो उनकी सर्व-शक्तिमत्ता को चुनौती दे रहे हों ।

निशम्य ते घर्षरितं स्वखेद-
क्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ।
जनस्तपःसत्यनिवासिनस्ते

त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगुणन्स्म ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

निशाम्य—सुनकर; ते—वे; घर्घरितम्—कोलाहलपूर्ण ध्वनि, घुरघुराहट; स्व-खेद—निजी शोक; क्षयिष्णु—विनष्ट करने वाला; माया-मय—सर्व कृपालु; सूकरस्य—सूकर का; जनः—जनलोक; तपः—तपोलोक; सत्य—सत्यलोक के; निवासिनः—निवासी; ते—वे सभी; त्रिभिः—तीन वेदों से; पवित्रैः—शुभ मंत्रों से; मुनयः—महान् चिन्तकों तथा ऋषियों ने; अगुणन् स्म—उच्चारण किया।

जब जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक के निवासी महर्षियों तथा चिन्तकों ने भगवान् सूकर की कोलाहलपूर्ण वाणी सुनी, जो सर्वकृपालु भगवान् की सर्वकल्याणमय ध्वनि थी तो उन्होंने तीनों वेदों से शुभ मंत्रों का उच्चारण किया।

तात्पर्य : इस श्लोक में मायामय शब्द अत्यन्त सार्थक है। माया का अर्थ है “कृपा” “विशेष ज्ञान” तथा “मोह”। इसलिए भगवान् सूकर सर्वस्व हैं—वे दयालु हैं, वे समस्त ज्ञान हैं और वे मोह भी हैं। वराह अवतार के रूप में उन्होंने जो ध्वनि की उसका उत्तर जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक में रहनेवाले मुनियों ने वैदिक मंत्रों से दिया। उन लोकों में सर्वोच्च बुद्धिमान तथा पवित्र जीव निवास करते हैं अतः जब उन्होंने वराह की असाधारण ध्वनि सुनी तो वे यह समझ गये कि यह विशेष ध्वनि भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी की नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने वैदिक मंत्रों से भगवान् की प्रार्थना करते हुए उसका उत्तर दिया। यद्यपि पृथ्वी कीचड़ में धँसी हुई थी, किन्तु भगवान् की ध्वनि सुनकर उच्चतर लोकों के निवासी परम हर्षित हुए, क्योंकि वे जान गये कि पृथ्वी का उद्धार करने के लिए भगवान् वहाँ थे। अतएव ब्रह्मा तथा सारे साधुगण यथा भृगु, ब्रह्मा के अन्य पुत्र तथा विद्वान् ब्राह्मण जीवन्त हो उठे और उन्होंने मिलकर वैदिक मंत्रों की दिव्य ध्वनि से भगवान् की प्रशंसा करने में उनका साथ दिया। सबसे महत्त्वपूर्ण मंत्र वृहन्नारदीय पुराण का मंत्र है—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।

तेषां सतां वेदवितानमूर्ति-

ब्रह्मावधार्यात्मगुणानुवादम् ।

विनद्य भूयो विबुधोदयाय

गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उन; सताम्—महान् भक्तों के; वेद—सम्पूर्ण ज्ञान; वितान-मूर्तिः—विस्तार का स्वरूप; ब्रह्म—वैदिक ध्वनि; अवधार्य—इसे ठीक से जानकर; आत्म—अपना; गुण-अनुवादम्—दिव्य गुणगान; विनद्य—प्रतिध्वनित; भूयः—पुनः;

विबुध—विद्वानों के; उदयाय—लाभ या उत्थान हेतु; गजेन्द्र-लीलः—हाथी के समान क्रीड़ा करते हुए; जलम्—जल में; आविवेश—प्रविष्ट हुआ।

हाथी के समान क्रीड़ा करते हुए वे महान् भक्तों द्वारा की गई वैदिक स्तुतियों के उत्तर में पुनः गर्जना करके जल में घुस गये। भगवान् वैदिक स्तुतियों के लक्ष्य हैं, अतएव वे समझ गये कि भक्तों की स्तुतियाँ उन्हीं के लिए की जा रही हैं।

तात्पर्य : भगवान् का कोई भी रूप दिव्य तथा ज्ञान एवं करुणा से पूरित होता है। भगवान् समस्त भौतिक कल्मष का विनाश करने वाले हैं, क्योंकि उनका स्वरूप साक्षात् वैदिक ज्ञान है। सारे वेद भगवान् के दिव्य रूप की पूजा करते हैं। वैदिक मंत्रों में भक्तगण भगवान् से चमचमाते तेज को हटाने की प्रार्थना करते हैं, क्योंकि यह उनके असली मुखमंडल को आच्छादित करता है। ईशोपनिषद् का यही कथन है। भगवान् के कोई भौतिक रूप नहीं होता, किन्तु उनके स्वरूप को सदैव वेदों के रूप में समझा जाता है। वेदों को भगवान् की साँस कहा गया है और वह साँस वेदों के आदि जिज्ञासु ब्रह्मा ने अपने भीतर खींची थी। ब्रह्मा के नथुने से ली गई साँस से भगवान् शूकर प्रकट हुए, अतएव भगवान् का शूकर अवतार साक्षात् वेद हैं। उच्चलोकों के मुनियों द्वारा अवतार का महिमागान वास्तविक वैदिक मंत्रों से युक्त था। जब भी भगवान् का महिमागान होता है, तो यह समझा जाना चाहिए कि वैदिक मंत्रों का ठीक से उच्चारण किया जा रहा है। अतएव जब वैदिक मंत्रों का उच्चारण हुआ तो भगवान् प्रसन्न हुए और अपने शुद्ध भक्तों को प्रोत्साहित करने के लिए पुनः एक बार उन्होंने गर्जना की और निमग्न पृथ्वी का उद्धार करने के लिए जल में प्रविष्ट हो गये।

उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः

सटा विधुन्वन्खररोमशत्वक् ।

खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षा

ज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

उत्क्षिप्त-वालः—पूँछ फटकारते; ख-चरः—आकाश में; कठोरः—अति कठोर; सटाः—कंधे तक लटकते बाल; विधुन्वन्—हिलाता; खर—तेज; रोमश-त्वक्—रोओं से भरी त्वचा; खुर-आहत—खुरों से टकराया; अभ्रः—बादल; सित-दंष्ट्रः—सफेद दाढ़ें; ईक्षा—चितवन; ज्योतिः—चमकीली; बभासे—तेज निकालने लगा; भगवान्—भगवान्; मही-ध्रः—जगत को धारण करने वाला।

पृथ्वी का उद्धार करने के लिए जल में प्रवेश करने के पूर्व भगवान् वराह अपनी पूँछ फटकारते तथा अपने कड़े बालों को हिलाते हुए आकाश में उड़े। उनकी चितवन चमकीली थी।

और उन्होंने अपने खुरों तथा चमचमाती सफेद दाढ़ों से आकाश में बादलों को बिखरा दिया।

तात्पर्य : जब भक्तों द्वारा भगवान् की स्तुतियाँ की जाती हैं, तो उनके दिव्य कार्यों का ही वर्णन होता है। भगवान् वराह के कुछ दिव्य गुण यहाँ दिये गये हैं। चूँकि तीनों उच्च लोकों के निवासियों ने भगवान् की स्तुतियाँ कीं, अतः यह समझा जाता है कि उनका शरीर सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक या सत्यलोक से लेकर पूरे आकाश में फैल गया था। *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है कि उनकी आँखें सूर्य तथा चन्द्रमा हैं, अतएव आकाश पर उनकी चितवन सूर्य या चन्द्रमा जितनी चमकीली थी। यहाँ पर भगवान् को *महीध्रः* कहा गया है, जिसका अर्थ है “विशाल पर्व” अथवा “पृथ्वी को धारण करने वाला।” दूसरे शब्दों में, भगवान् का शरीर हिमालय पर्वत जैसा विशाल तथा कठोर था, अन्यथा वे सम्पूर्ण पृथ्वी को अपनी श्वेत दाढ़ों के सहारे किस तरह धारण करते? भगवान् के महान् भक्त कविवर जयदेव ने इस घटना को अवतारों की अपनी स्तुति में इस प्रकार गाया है—

वसति दशनशिखरे धरणी तव लगना

शशिनि कलंककलेव निमग्ना

केशव धृत शूकर रूप जय जगदीश हरे ॥

“भगवान् केशव (कृष्ण) की जय हो जो शूकर के रूप में प्रकट हुए। पृथ्वी उनकी दाढ़ों के बीच में पकड़ी हुई थी जो चन्द्रमा पर कलंक के निशान जैसी प्रतीत हो रही थी।”

घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्

क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ।

करालदंष्ट्रोऽप्यकरालहृग्भ्या-

मुद्गीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

घ्राणेन—सूँघने से; पृथ्व्याः—पृथ्वी की; पदवीम्—स्थिति; विजिघ्रन्—पृथ्वी की खोज करते हुए; क्रोड-अपदेशः—सूकर का शरीर धारण किये हुए; स्वयम्—स्वयं; अध्वर—दिव्य; अङ्गः—शरीर; कराल—भयावना; दंष्ट्रः—दाँत (दाढ़ें); अपि—के बावजूद; अकराल—भयावना नहीं; हृग्भ्याम्—अपनी चितवन से; उद्गीक्ष्य—दृष्टि दौड़ाकर; विप्रान्—सारे ब्राह्मण भक्त; गृणतः—स्तुति में लीन; अविशत्—प्रवेश दिया; कम्—जल में।

वे साक्षात् परम प्रभु विष्णु थे, अतएव दिव्य थे, फिर भी सूकर का शरीर होने से उन्होंने पृथ्वी को उसकी गंध से खोज निकाला। उनकी दाढ़ें अत्यन्त भयावनी थीं। उन्होंने स्तुति करने में व्यस्त भक्त-ब्राह्मणों पर अपनी दृष्टि दौड़ाई। इस तरह वे जल में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : हमें यह सदैव स्मरण रखना होगा कि यद्यपि शूकर का शरीर भौतिक होता है, किन्तु भगवान् का शूकर रूप भौतिकता से कल्मषग्रस्त नहीं था। किसी पार्थिव शूकर के लिए सम्भव नहीं कि वह ऐसा विराट रूप धारण कर सके जो सत्यलोक से लेकर पूरे आकाश में फैला हो। उनका शरीर सभी परिस्थितियों में दिव्य होता है, अतएव शूकर रूप धारण करना उनकी लीला मात्र है। उनका शरीर सम्पूर्ण वेद हैं या दिव्य है। किन्तु क्योंकि उन्होंने शूकर का रूप धारण किया था, अतएव वे शूकर की तरह सूँघ कर पृथ्वी की खोज करने लगे। भगवान् किसी भी जीव की भूमिका पूरी तरह से निभा सकते हैं। शूकर का विराट रूप निश्चय ही समस्त अभक्तों के लिए अतीव भयावना था किन्तु भगवान् के शुद्ध भक्तों के लिए वह तनिक भी भयावना नहीं था। विपरीत इसके, वे अपने भक्तों पर इतनी प्रसन्नता से दृष्टिपात कर रहे थे कि उन सबों को दिव्य सुख का अनुभव हुआ।

स वज्रकूटाङ्गनिपातवेग-

विशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ।

उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्त-

श्रुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वज्र-कूट-अङ्ग—विशाल पर्वत जैसा शरीर; निपात-वेग—डुबकी लगाने का वेग; विशीर्ण—दो भागों में करते हैं; कुक्षिः—मध्य भाग को; स्तनयन्—के समान गुँजाते; उदन्वान्—समुद्र; उत्सृष्ट—उत्पन्न करके; दीर्घ—ऊँची; ऊर्मि—लहरें; भुजैः—बाँहों से; इव आर्तः—दुखी पुरुष की तरह; चुक्रोश—तेज स्वर से स्तुति की; यज्ञ-ईश्वर—हे समस्त यज्ञों के स्वामी; पाहि—कृपया बचायें; मा—मुझको; इति—इस प्रकार।

दानवाकार पर्वत की भाँति जल में गोता लगाते हुए भगवान् वराह ने समुद्र के मध्यभाग को विभाजित कर दिया और दो ऊँची लहरें समुद्र की भुजाओं की तरह प्रकट हुईं जो उच्च स्वर से आर्तनाद कर रही थीं मानो भगवान् से प्रार्थना कर रही हों, “हे समस्त यज्ञों के स्वामी, कृपया मेरे दो खण्ड न करें। कृपा करके मुझे संरक्षण प्रदान करें।”

तात्पर्य : दिव्य शूकर के पर्वत जैसे शरीर के आ गिरने से महासागर तक विचलित था और वह भयभीत प्रतीत हो रहा था मानो मृत्यु निकट हो।

खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाप

उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ।

ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे

यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

खुरैः—खुरों से; क्षुरप्रैः—तेज हथियार के समान; दरयन्—घुस कर; तत्—वह; आपः—जल; उत्पार-पारम्—असीम् की सीमा पा ली; त्रि-परुः—सभी यज्ञों का स्वामी; रसायाम्—जल के भीतर; ददर्श—पाया; गाम्—पृथ्वी को; तत्र—वहाँ; सुषुप्सुः—लेटे हुए; अग्रे—प्रारम्भ में; याम्—जिसको; जीव-धानीम्—सभी जीवों की विश्राम की स्थली; स्वयम्—स्वयं; अभ्यधत्त—ऊपर उठा लिया।

भगवान् वराह तीरों जैसे नुकीले अपने खुरों से जल में घुस गये और उन्होंने अथाह समुद्र की सीमा पा ली। उन्होंने समस्त जीवों की विश्रामस्थली पृथ्वी को उसी तरह पड़ी देखा जिस तरह वह सृष्टि के प्रारम्भ में थी और उन्होंने उसे स्वयं ऊपर उठा लिया।

तात्पर्य : कभी-कभी रसायाम् का अर्थ रसातल अर्थात् निम्नतम लोक निकाला जाता है, किन्तु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार इस प्रसंग में यह लागू नहीं होता। पृथ्वी अन्य लोकों अर्थात् तल, अतल, तलातल, वितल, रसातल, पाताल इत्यादि की अपेक्षा सात गुनी श्रेष्ठ है। अतः पृथ्वी रसातल लोक में स्थित नहीं हो सकती। विष्णु धर्म में वर्णन हुआ है कि—

पातालमूलेश्वरभोगसंहतौ

विन्यस्य पादौ पृथिवीं च बिभ्रतः ।

यस्योपमानो न बभूव सोऽच्युतो

ममास्तु माङ्गल्यविवृद्धये हरिः ॥

अतएव भगवान् ने पृथ्वी को गर्भोदक सागर की पेंदी में पाया जहाँ ब्रह्मा के दिन की समाप्ति पर प्रलय के समय सारे लोक विश्राम करते हैं।

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां

स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ।

तत्रापि दैत्यं गदयापतन्तं

सुनाभसन्दीपिततीव्रमन्युः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

स्व-दंष्ट्रया—अपनी ही दाढ़ों से; उद्धृत्य—उठाकर; महीम्—पृथ्वी को; निमग्नाम्—डूबी हुई; सः—उसने; उत्थितः—ऊपर उठाकर; संरुरुचे—अतीव भव्य दिखाई पड़ा; रसायाः—जल से; तत्र—वहाँ; अपि—भी; दैत्यम्—असुर को; गदया—गदा से; आपतन्तम्—उसकी ओर दौड़ाते हुए; सुनाभ—कृष्ण का चक्र; सन्दीपित—चमकता हुआ; तीव्र—भयानक; मन्युः—क्रोध।

भगवान् वराह ने बड़ी ही आसानी से पृथ्वी को अपनी दाढ़ों में ले लिया और वे उसे जल से

बाहर निकाल लाये। इस तरह वे अत्यन्त भव्य लग रहे थे। तब उनका क्रोध सुदर्शन चक्र की तरह चमक रहा था और उन्होंने तुरन्त उस असुर (हिरण्याक्ष) को मार डाला, यद्यपि वह भगवान् से लड़ने का प्रयास कर रहा था।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार वैदिक ग्रन्थों में भगवान् वराह के अवतार का वर्णन दो विभिन्न प्रलयों—चाक्षुष प्रलय तथा स्वायम्भुव प्रलय—में हुआ है। वराह का यह विशेष अवतार वस्तुतः स्वायम्भुव प्रलय में हुआ जब उच्चतर लोकों—जन, महर तथा सत्य—को छोड़ कर शेष सारे लोक प्रलय-जल में डूबे थे। वराह के इस अवतार को उपर्युक्त लोकों के वासियों ने देखा था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती सुझाते हैं कि मुनि मैत्रेय ने विभिन्न प्रलयों के दोनों वराह अवतारों को एक में मिलाकर उनका सारांश रूप विदुर के समक्ष रखा।

जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं
स लीलयेभं मृगराडिवाम्भसि ।
तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो
यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

जघान—वध किया; रुन्धानम्—अवरोध उत्पन्न करनेवाला शत्रु; असह्य—असहनीय; विक्रमम्—पराक्रम; सः—उसने; लीलया—सरलतापूर्वक; इभम्—हाथी; मृग-राट्—सिंह; इव—सदृश; अम्भसि—जल में; तत्-रक्त—उसके रक्त का; पङ्क-अङ्कित—कीचड़ से रंगा हुआ; गण्ड—गाल; तुण्डः—जीभ; यथा—मानो; गजेन्द्रः—हाथी; जगतीम्—पृथ्वी को; विभिन्दन्—खोदते हुए।

तत्पश्चात् भगवान् वराह ने उस असुर को जल के भीतर मार डाला जिस तरह एक सिंह हाथी को मारता है। भगवान् के गाल तथा जीभ उस असुर के रक्त से उसी तरह रंगे गये जिस तरह हाथी नीललोहित पृथ्वी को खोदने से लाल हो जाता है।

तमालनीलं सितदन्तकोट्या
क्षमामुत्क्षिपन्तं गजलीलयाङ्ग ।
प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकै-
र्विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तमाल—नीला वृक्ष जिसका नाम तमाल है; नीलम्—नीले रंग का; सित—श्वेत; दन्त—दाँत; कोट्या—टेढ़ी कोर वाला; क्षमाम्—पृथ्वी; उत्क्षिपन्तम्—लटकाये हुए; गज-लीलया—हाथी की तरह क्रीड़ा करता; अङ्ग—हे विदुर; प्रज्ञाय—इसे जान

लेने पर; बद्ध—जोड़े हुए; अञ्जलयः—हाथ; अनुवाकैः—वैदिक मंत्रों से; विरिञ्चि—ब्रह्मा; मुख्याः—इत्यादि; उपतस्थुः—स्तुति की; ईशम्—भगवान् के प्रति ।

तब हाथी की तरह क्रीड़ा करते हुए भगवान् ने पृथ्वी को अपने सफेद टेढ़े दाँतों के किनारे पर अटका लिया । उनके शरीर का वर्ण तमाल वृक्ष जैसा नीलाभ हो गया और तब ब्रह्मा इत्यादि ऋषि उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् समझ सके और उन्होंने सादर नमस्कार किया ।

ऋषय ऊचुः

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन

त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।

यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरद्धय-

स्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

ऋषयः ऊचुः—यशस्वी ऋषि बोल पड़े; जितम्—जय हो; जितम्—जय हो; ते—तुम्हारी; अजित—हे न जीते जा सकने वाले; यज्ञ-भावन—यज्ञ सम्पन्न करने पर जाना जाने वाले; त्रयीम्—साक्षात् वेद; तनुम्—ऐसा शरीर; स्वाम्—अपना; परिधुन्वते—हिलाते हुए; नमः—नमस्कार; यत्—जिसके; रोम—रोएँ; गर्तेषु—छेदों में; निलिल्युः—डूबे हुए; अद्धयः—सागर; तस्मै—उसको; नमः—नमस्कार करते हुए; कारण-सूकराय—सकारण शूकर विग्रह धारण करने वाले; ते—तुमको ।

सारे ऋषि अति आदर के साथ बोल पड़े ' हे समस्त यज्ञों के अजेय भोक्ता, आपकी जय हो, जय हो, आप साक्षात् वेदों के रूप में विचरण कर रहे हैं और आपके शरीर के रोमकूपों में सारे सागर समाये हुए हैं । आपने किन्हीं कारणों से (पृथ्वी का उद्धार करने के लिए) अब सूकर का रूप धारण किया है ।

तात्पर्य : भगवान् इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकते हैं और सारी परिस्थितियों में वे समस्त कारणों के कारण हैं । चूँकि उनका रूप दिव्य होता है, अतः वे सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं जैसे कि कारणार्णव में वे महाविष्णु के रूप में रहते हैं । उनके शरीर के रोमकूपों से असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं और इस तरह उनका दिव्य शरीर साक्षात् वेद हैं । वे समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं और अजेय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं । उनसे मात्र इसलिए भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी रूप का भ्रम नहीं होना चाहिए कि पृथ्वी का उद्धार करने के लिए उन्होंने शूकर रूप धारण किया है । ऋषियों तथा ब्रह्मा जैसे महापुरुष एवं उच्च लोकों के अन्य वासियों की यही स्पष्ट धारणा है ।

रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां

दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोम-
स्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

रूपम्—स्वरूप; तव—तुम्हारा; एतत्—यह; ननु—लेकिन; दुष्कृत-आत्मनाम्—दुष्टात्माओं का; दुर्दर्शनम्—देख पाना कठिन; देव—हे प्रभु; यत्—वह; अध्वर-आत्मकम्—यज्ञ सम्पन्न करने के कारण पूजनीय; छन्दांसि—गायत्री तथा अन्य छंद; यस्य—जिसके; त्वचि—त्वचा का स्पर्श; बर्हिः—कुश नामक पवित्र घास; रोमसु—शरीर के रोएँ; आन्यम्—घी; दृशि—आँखों में; तु—भी; अङ्घ्रिषु—चारों पाँवों पर; चातुः-होत्रम्—चार प्रकार के सकाम कर्म।

हे प्रभु, आपका स्वरूप यज्ञ सम्पन्न करके पूजा के योग्य है, किन्तु दुष्टात्माएँ इसे देख पाने में असमर्थ हैं। गायत्री तथा अन्य सारे वैदिक मंत्र आपकी त्वचा के सम्पर्क में हैं। आपके शरीर के रोम कुश हैं, आपकी आँखें घृत हैं और आपके चार पाँव चार प्रकार के सकाम कर्म हैं।

तात्पर्य : दुष्टों का एक वर्ग है, जिसे भगवद्गीता में वेदवादी कहा गया है, अर्थात् जो वेदों के कट्टर अनुयायी हैं। वे भगवान् के अवतार में विश्वास नहीं करते। पूज्य शूकर के रूप में भगवान् के अवतार के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। वे भगवान् के विभिन्न रूपों या अवतारों की पूजा को अवतारवाद कहते हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार ये व्यक्ति दुष्ट हैं और भगवद्गीता (७.१५) में इन्हें न केवल दुष्ट, अपितु मूर्ख तथा मनुष्यों में अधम कहा गया है। और यह भी कहा गया है कि उनका ज्ञान उनके नास्तिकतावादी स्वभाव के कारण मोह द्वारा हरा जा चुका है। ऐसे गर्हित व्यक्तियों के लिए विराट शूकर के रूप में भगवान् का अवतार अदृश्य रहता है। वेदों के कट्टर अनुयायियों को, जो भगवान् के नित्य रूपों का उपहास करते हैं, श्रीमद्भागवत से जान लेना चाहिए कि ऐसे अवतार साक्षात् वेदों के रूप हैं। भगवान् वराह की त्वचा, उनकी आँखें तथा उनके शरीर के रोमकूपों का वर्णन यहाँ पर वेदों के विभिन्न अंगों के रूप में हुआ है। अतएव वे वैदिक मंत्रों के, विशेष रूप से गायत्रीमंत्र के, साक्षात् रूप हैं।

स्रक्तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयो-
रिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते
यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

स्रक्—यज्ञ का पात्र; तुण्डे—जीभ पर; आसीत्—है; स्रुवः—यज्ञ का दूसरा पात्र; ईश—हे प्रभु; नासयोः—नथुनों का; इडा—खाने का पात्र; उदरे—पेट में; चमसाः—यज्ञ का अन्य पात्र, चम्मच; कर्ण-रन्ध्रे—कान के छेदों में; प्राशित्रम्—ब्रह्मा नामक

पात्र; आस्ये—मुख में; ग्रसने—गले में; ग्रहाः—सोम पात्र; तु—लेकिन; ते—तुम्हारा; यत्—जो; चर्वणम्—चबाना; ते—तुम्हारा; भगवन्—हे प्रभु; अग्नि-होत्रम्—अपनी यज्ञ-अग्नि के माध्यम से तुम्हारा भोजन है।

हे प्रभु, आपकी जीभ यज्ञ का पात्र (स्रक्) है, आपका नथुना यज्ञ का अन्य पात्र (स्रुवा) है। आपके उदर में यज्ञ का भोजन-पात्र (इडा) है और आपके कानों के छिद्रों में यज्ञ का अन्य पात्र (चमस) है। आपका मुख ब्रह्मा का यज्ञ पात्र (प्राशित्र) है, आपका गला यज्ञ पात्र है, जिसका नाम सोमपात्र है तथा आप जो भी चबाते हैं वह अग्निहोत्र कहलाता है।

तात्पर्य : वेदवादियों का कहना है कि वेदों तथा वेदों में वर्णित यज्ञ अनुष्ठानों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उन्होंने हाल ही में अपने दल का यह नियम बनाया है कि प्रतिदिन यज्ञ किया जाय। वे थोड़ी सी आग जलाकर उसमें मनमाने ढंग से कुछ होम करते हैं, किन्तु वेदों में उल्लिखित यज्ञ विषयक विधि-विधानों का कड़ाई से पालन नहीं करते। ऐसा माना जाता है कि विधान के अनुसार यज्ञ के विभिन्न पात्रों की यथा स्रक्, स्रुवा, बर्हि, चातुर्होत्र, इडा, चमस, प्राशित्र, ग्रह तथा अग्निहोत्र की आवश्यकता होती है। जब तक इन कठिन नियमों का पालन नहीं किया जाता, यज्ञ के फल प्राप्त नहीं हो पाते। इस युग में यज्ञों को सही ढंग से सम्पन्न करने की एक तरह से कोई सुविधा ही नहीं है। अतः इस कलियुग में ऐसे यज्ञों के लिए एक बाध्य आदेश है—यह स्पष्ट निर्देश है कि मनुष्य केवल संकीर्तन यज्ञ करे, अन्य कुछ भी नहीं। भगवान् का अवतार यज्ञेश्वर है और जब तक भगवान् के अवतार के लिए आदर भाव न हो तब तक यज्ञ पूर्णरूपेण नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, भगवान् की शरण-ग्रहण करना और उनकी सेवा करना समस्त यज्ञों का वास्तविक अनुष्ठान है जैसाकि यहाँ पर बताया गया है यज्ञ के विभिन्न पात्र भगवान् के अवतार के शरीर के विभिन्न भागों को बताने वाले हैं। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में इसका स्पष्ट निर्देश है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भगवान् के अवतार को प्रसन्न करने के लिए मनुष्य को संकीर्तन यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ का फल पाने के लिए इसका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।

दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं

त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।

जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः

सत्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

दीक्षा—दीक्षा; अनुजन्म—आध्यात्मिक जन्म या बारम्बार अवतार; उपसदः—तीन प्रकार की इच्छाएँ (सम्बन्ध, कर्म तथा चरम लक्ष्य); शिरः—धरम्—गर्दन; त्वम्—तुम; प्रायणीय—दीक्षा के परिणाम के बाद; उदयनीय—इच्छाओं का अन्तिम संस्कार; दंष्ट्रः—दाढ़ें; जिह्वा—जीभ; प्रवर्ग्यः—पहले के कार्य; तव—तुम्हारा; शीर्षकम्—सिर; क्रतोः—यज्ञ का; सत्य—यज्ञ के बिना अग्नि; आवसथ्यम्—पूजा की अग्नि; चितयः—समस्त इच्छाओं का समूह; असवः—प्राणवायु; हि—निश्चय ही; ते—तुम्हारा ।

हे प्रभु, इसके साथ ही साथ सभी प्रकार की दीक्षा के लिए आपके बारम्बार प्राकट्य की आकांक्षा भी है। आपकी गर्दन तीनों इच्छाओं का स्थान है और आपकी दाढ़ें दीक्षा-फल तथा सभी इच्छाओं का अन्त हैं, आप की जिह्वा दीक्षा के पूर्व-कार्य हैं, आपका सिर यज्ञ रहित अग्नि तथा पूजा की अग्नि है तथा आप की जीवनी-शक्ति समस्त इच्छाओं का समुच्चय है।

सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः

संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।

सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धि-

स्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सोमः तु रेतः—आपका वीर्य सोमयज्ञ है; सवनानि—प्रातःकाल के अनुष्ठान; अवस्थितिः—शारीरिक वृद्धि की विभिन्न अवस्थाएँ; संस्था-विभेदाः—यज्ञ के सात प्रकार; तव—तुम्हारा; देव—हे प्रभु; धातवः—शरीर के अवयव यथा त्वचा एवं मांस; सत्राणि—बारह दिनों तक चलने वाले यज्ञ; सर्वाणि—सारे; शरीर—शारीरिक; सन्धिः—जोड़; त्वम्—आप; सर्व—समस्त; यज्ञ—असोम यज्ञ; क्रतुः—सोम यज्ञ; इष्टि—चरम इच्छा; बन्धनः—आसक्ति ।

हे प्रभु, आपका वीर्य सोम नामक यज्ञ है। आपकी वृद्धि प्रातःकाल सम्पन्न किये जाने वाले कर्मकाण्डीय अनुष्ठान हैं। आपकी त्वचा तथा स्पर्श अनुभूति अग्निष्टोम यज्ञ के सात तत्त्व हैं। आपके शरीर के जोड़ बारह दिनों तक किये जाने वाले विविध यज्ञों के प्रतीक हैं। अतएव आप सोम तथा असोम नामक सभी यज्ञों के लक्ष्य हैं और आप एकमात्र यज्ञों से बंधे हुए हैं।

तात्पर्य : वैदिक कर्मकाण्ड के अनुयायी सात प्रकार के सामान्य यज्ञ करते हैं, जिन्हें *अग्निष्टोम*, *अत्यग्निष्टोम*, *उक्थ*, *षोडशी*, *वाजपेय*, *अतिरात्र* तथा *आप्तोर्याम* कहते हैं। जो भी व्यक्ति ऐसे यज्ञों को नियमित रूप से सम्पन्न करता है, वह भगवान् के पास स्थित माना जाता है। किन्तु जो कोई भक्ति योग सम्पन्न करके भगवान् के सम्पर्क में रहता है उसके लिए यह समझा जाता है कि उसने विभिन्न प्रकार के सभी यज्ञ सम्पन्न कर लिए हैं।

नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवता-

द्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
 वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावित-
 ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

नमः नमः—नमस्कार है; ते—आपको, जो कि आराध्य है; अखिल—सभी सम्मिलित रूप से; मन्त्र—मंत्र; देवता—भगवान्;
 द्रव्याय—यज्ञ सम्पन्न करने की समस्त सामग्रियों को; सर्व-क्रतवे—सभी प्रकार के यज्ञों को; क्रिया-आत्मने—सभी यज्ञों के
 परम रूप आपको; वैराग्य—वैराग्य; भक्त्या—भक्ति द्वारा; आत्म-जय-अनुभावित—मन को जीतने पर अनुभूत किए जाने
 वाले; ज्ञानाय—ऐसे ज्ञान को; विद्या-गुरवे—समस्त ज्ञान के परम गुरु को; नमः नमः—मैं पुनः सादर नमस्कार करता हूँ।

हे प्रभु, आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और वैश्विक-प्रार्थनाओं, वैदिक मंत्रों तथा यज्ञ की सामग्री द्वारा पूजनीय हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। आप समस्त दृश्य तथा अदृश्य भौतिक कल्मष से मुक्त शुद्ध मन द्वारा अनुभवगम्य हैं। हम आपको भक्ति-योग के ज्ञान के परम गुरु के रूप में सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : भगवद्भक्ति के लिए योग्यता यह है कि भक्त को समस्त भौतिक कल्मषों तथा इच्छाओं से मुक्त होना चाहिए। यह मुक्तावस्था वैराग्य अर्थात् भौतिक इच्छाओं से विरक्ति कहलाती है। जो व्यक्ति विधिविधानों के अनुसार भक्ति में लगा रहता है, वह स्वतः भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और उस शुद्ध मनोदशा में वह भगवान् की अनुभूति कर सकता है। प्रत्येक के हृदय में स्थित होने से भगवान् भक्त को शुद्धभक्ति के विषय में शिक्षा देते हैं जिससे वह अन्ततः भगवान् की संगति प्राप्त कर सके। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (१०.१०) में इस प्रकार हुई है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

“जो व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेम के साथ निरन्तर भगवान् की भक्ति में लगा रहता है उसे अन्त में भगवान् निश्चित रूप से अपने को प्राप्त करने के लिए बुद्धि प्रदान करते हैं।”

मनुष्य को मन जीतना होता है और वह ऐसा वैदिक अनुष्ठानों द्वारा तथा विभिन्न प्रकार के यज्ञ सम्पन्न करके कर सकता है। इन समस्त कार्यों का चरम अन्त भगवान् की भक्ति प्राप्त करना है। भक्ति के बिना भगवान् को नहीं समझा जा सकता। आदि भगवान् या उनके असंख्य विष्णु अंश ही समस्त वैदिक अनुष्ठानों तथा यज्ञों के द्वारा पूजा के एकमात्र लक्ष्य हैं।

दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता
विराजते भूधर भूः सभूधरा ।
यथा वनान्निःसरतो दत्ता धृता
मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

दंष्ट्र-अग्र—दाढ़ के अगले भाग; कोट्या—किनारों के द्वारा; भगवन्—हे भगवान्; त्वया—आपके द्वारा; धृता—धारण किया; विराजते—सुन्दर ढंग से स्थित है; भू-धर—हे पृथ्वी के उठाने वाले; भूः—पृथ्वी; स-भूधरा—पर्वतों सहित; यथा—जिस तरह; वनात्—जल से; निःसरतः—बाहर आते हुए; दत्ता—दाँत से; धृता—पकड़े हुए है; मतम्-गजेन्द्रस्य—क्रुद्ध हाथी; स-पत्र—पत्तियों सहित; पद्मिनी—कमलिनी ।

हे पृथ्वी के उठाने वाले, आपने जिस पृथ्वी को पर्वतों समेत उठाया है, वह उसी तरह सुन्दर लग रही है, जिस तरह जल से बाहर आने वाले क्रुद्ध हाथी के द्वारा धारण की गई पत्तियों से युक्त एक कमलिनी ।

तात्पर्य : पृथ्वी लोक के भाग्य की सराहना इसलिए की गई है, क्योंकि इसे भगवान् ने विशेष रूप से धारण किया है । इसके सौन्दर्य की प्रशंसा की जा रही है और इसकी तुलना उस कमल के फूल की सुन्दरता से भी की जा रही है, जो हाथी की सूँड़ पर स्थित है । चूँकि कमल का फूल पत्तियों समेत अत्यन्त सुन्दर लगता है उसी तरह यह पृथ्वी अपने अनेक सुन्दर पर्वतों समेत भगवान् वराह की दाढ़ों पर शोभायमान हो रही थी ।

त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं
भूमण्डलेनाथ दत्ता धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा
कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

त्रयी-मयम्—साक्षात् वेद; रूपम्—स्वरूप; इदम्—यह; च—भी; सौकरम्—सूकर का; भू-मण्डलेन—भूलोक द्वारा; अथ—अब; दत्ता—दाढ़ के द्वारा; धृतेन—धारण किया गया; ते—तुम्हारी; चकास्ति—चमक रही है; शृङ्ग-ऊढ—शिखरों द्वारा धारित; घनेन—बादलों द्वारा; भूयसा—अत्यधिक मंडित; कुल-अचल-इन्द्रस्य—विशाल पर्वतों के; यथा—जिस तरह; एव—निश्चय ही; विभ्रमः—अलंकरण ।

हे प्रभु, जिस तरह बादलों से अलंकृत होने पर विशाल पर्वतों के शिखर सुन्दर लगने लगते हैं उसी तरह आपका दिव्य शरीर सुन्दर लग रहा है, क्योंकि आप पृथ्वी को अपनी दाढ़ों के सिरे पर उठाये हुए हैं ।

तात्पर्य : विभ्रमः शब्द सार्थक है । विभ्रमः का अर्थ है “भ्रम” तथा “सौन्दर्य ।” जब कोई बादल

किसी विशाल पर्वत की चोटी पर विश्राम करता है, तो ऐसा लगता है मानो उसे पर्वत ने उठा रखा हो। साथ ही वह अत्यन्त सुन्दर लगता है। इसी तरह भगवान् को अपनी दाढ़ों पर पृथ्वी धारण करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु जब वे ऐसा करते हैं, तो संसार उसी तरह सुन्दर लगने लगता है, जिस तरह भगवान् पृथ्वी पर अपने शुद्ध भक्तों के कारण अधिक सुन्दर लगते हैं। यद्यपि भगवान् वैदिक मंत्रों के दिव्य स्वरूप हैं, किन्तु पृथ्वी को धारण करने के कारण वे अत्यधिक सुन्दर लग रहे हैं।

संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां

लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।

विधेम चास्यै नमसा सह त्वया

यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

संस्थापय एनाम्—इस पृथ्वी को उठाओ; जगताम्—चर; स-तस्थुषाम्—तथा अचर दोनों; लोकाय—उनके निवास स्थान के लिए; पत्नीम्—पत्नी; असि—हो; मातरम्—माता; पिता—पिता; विधेम—हम अर्पित करते हैं; च—भी; अस्यै—माता को; नमसा—नमस्कार; सह—समेत; त्वया—तुम्हारे साथ; यस्याम्—जिसमें; स्व-तेजः—अपनी शक्ति द्वारा; अग्निम्—अग्नि; इव—सदृश; अरणौ—अरणि काष्ठ में; अधाः—निहित।

हे प्रभु, यह पृथ्वी चर तथा अचर दोनों प्रकार के निवासियों के रहने के लिए आपकी पत्नी है और आप परम पिता हैं। हम उस माता पृथ्वी समेत आपको सादर नमस्कार करते हैं जिसमें आपने अपनी शक्ति स्थापित की है, जिस तरह कोई दक्ष यज्ञकर्ता अरणि काष्ठ में अग्नि स्थापित करता है।

तात्पर्य : तथाकथित गुरुत्वाकर्षण का नियम, जो लोकों को स्थिर रखता है, यहाँ पर उसे भगवान् की शक्ति बतलाया गया है। इस शक्ति को भगवान् ने उसी तरह स्थापित कर रखा है, जिस तरह दक्ष यज्ञकर्ता ब्राह्मण वैदिक मंत्रों की शक्ति से अरणि काष्ठ में अग्नि को स्थापित करता है। इस व्यवस्था से यह संसार चर तथा अचर प्राणियों के लिए रहने के योग्य बन जाता है। सारे बद्धजीव, जो कि इस भौतिक जगत के वासी हैं, माता पृथ्वी के गर्भ में उसी प्रकार स्थापित किये जाते हैं जिस तरह पिता द्वारा माता के गर्भ में शिशु का बीज स्थापित किया जाता है। पिता के रूप में भगवान् तथा माता के रूप में पृथ्वी की यह विचारधारा *भगवद्गीता* (१४.४) में विवेचित है। बद्धजीव उस जन्मभूमि के प्रति भक्तिभाव से पूरित रहते हैं जिसमें वे जन्म लेते हैं, किन्तु वे अपने पिता को जानते नहीं। माता सन्तान उत्पन्न करने के मामले में स्वतंत्र नहीं है। इसी तरह भौतिक प्रकृति तब तक जीवित प्राणियों को उत्पन्न

नहीं कर सकती जब तक वह परम पिता परमेश्वर के सम्पर्क में न आये। *श्रीमद्भागवत* हमें परम पिता के साथ साथ माता को नमस्कार करने की शिक्षा देती है, क्योंकि पिता ही समस्त चराचर जीवों के धारण तथा पालन करने के लिए माता को समस्त शक्तियों से गर्भित करता है।

कः श्रद्धीतान्यतमस्तव प्रभो
रसां गताया भुव उद्विर्बर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये
यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

कः—और कौन; श्रद्धीत—प्रयास कर सकता है; अन्यतमः—आपके अतिरिक्त अन्य कोई; तव—तुम्हारा; प्रभो—हे प्रभु; रसाम्—जल में; गतायाः—पड़ी हुई; भुवः—पृथ्वी को; उद्विर्बर्हणम्—उद्धार; न—कभी नहीं; विस्मयः—आश्चर्यमय; असौ—ऐसा कार्य; त्वयि—तुमको; विश्व—विश्व के; विस्मये—आश्चर्यों से पूर्ण; यः—जो; मायया—शक्तियों द्वारा; इदम्—यह; ससृजे—उत्पन्न किया; अतिविस्मयम्—सभी आश्चर्यों से बढ़कर।

हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, आपके अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो जल के भीतर से पृथ्वी का उद्धार कर सकता? किन्तु यह आपके लिए बहुत आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि ब्रह्माण्ड के सृजन में आपने अति अद्भुत कार्य किया है। अपनी शक्ति से आपने इस अद्भुत विराट जगत की सृष्टि की है।

तात्पर्य : जब कोई विज्ञानी मनुष्य अज्ञानी जन समूह के लिए किसी प्रभावशाली वस्तु की खोज करता है, तो सामान्य लोग बिना पूछताछ के ऐसी खोज को आश्चर्यजनक मान लेते हैं। किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति ऐसी खोजों से तनिक भी आश्चर्यचकित नहीं होता। वह उस व्यक्ति को सारा श्रेय प्रदान करता है, जिसने विज्ञानी के अद्भुत मस्तिष्क को बनाया। एक सामान्य व्यक्ति भी भौतिक प्रकृति के अद्भुत कार्य से विस्मित होता है और वह सारा श्रेय विराट जगत को प्रदान करता है। किन्तु एक विद्वान कृष्णभावनाभावित व्यक्ति यह भली-भाँति जानता रहता है कि विराट जगत के पीछे कृष्ण का मस्तिष्क कार्य करता है, जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.१०) में हुई है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*। चूँकि कृष्ण अद्भुत विराट जगत का संचालन कर सकते हैं, अतएव उनके लिए वराह का विराट रूप धारण करना और फिर पृथ्वी को जल के कीचड़ से निकालना तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है। इसीलिए भक्त अद्भुत शूकर को देखकर चकित नहीं होता, क्योंकि वह जानता रहता है कि भगवान् में अपनी शक्तियों के द्वारा कहीं अधिक आश्चर्यजनक कार्य जो बड़े से बड़े विद्वान विज्ञानी के मस्तिष्क के

लिए अचिन्त्य हैं, करने की क्षमता है।

विधुन्वता वेदमयं निजं वपु-
 र्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ।
 सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभि-
 र्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

विधुन्वता—हिलाते हुए; वेद-मयम्—साक्षात् वेद; निजम्—अपना; वपुः—शरीर; जनः—जनलोक; तपः—तपोलोक; सत्य—सत्यलोक; निवासिनः—निवासी; वयम्—हम; सटा—कन्धे तक लटकते बाल; शिख-उद्धूत—चोटी (शिखा) के द्वारा धारण किया हुआ; शिव—शुभ; अम्बु—जल; बिन्दुभिः—कणों के द्वारा; विमृज्यमानाः—छिड़के जाते हुए हम; भृशम्—अत्यधिक; ईश—हे परमेश्वर; पाविताः—पवित्र किये गये।

हे परमेश्वर, निस्सन्देह, हम जन, तप तथा सत्य लोकों जैसे अतीव पवित्र लोकों के निवासी हैं फिर भी हम आपके शरीर के हिलने से आपके कंधों तक लटकते बालों के द्वारा छिड़के गए जल की बूंदों से शुद्ध बन गये हैं।

तात्पर्य : सामान्यतया शूकर का शरीर अशुद्ध माना जाता है, किन्तु हमें यह नहीं मानना चाहिए कि भगवान् द्वारा धारण किया हुआ शूकर अवतार भी अशुद्ध है। भगवान् का वह रूप साक्षात् वेद हैं और दिव्य है। जन, तप तथा सत्य लोकों के निवासी भौतिक विश्व के सर्वाधिक पवित्र व्यक्ति हैं, किन्तु क्योंकि ये लोक भी भौतिक जगत में स्थित हैं, अतएव उनमें भी अनेकानेक भौतिक अशुद्धियाँ हैं। इसलिए जब भगवान् के कन्धों तक लटके हुए बालों के अग्रभागों से जल की बूँदें इन उच्चलोकों के निवासियों के शरीरों पर छिड़की गईं तो वे अपने को शुद्ध हुआ अनुभव कर रहे थे। गंगा का जल इसलिए शुद्ध है क्योंकि यह भगवान् के पाँव के अँगूठे से निकलता है और अँगूठे से निकलने वाले जल तथा भगवान् वराह के कन्धों तक लटकते बालों की छोरों से टपकने वाले जल में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही परम और दिव्य हैं।

स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैषते
 यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
 यद्योगमायागुणयोगमोहितं
 विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निश्चय ही; बत—हाय; भ्रष्ट-मतिः—मतिभ्रष्ट, मूर्ख; तव—तुम्हारी; एषते—इच्छाएँ; यः—जो; कर्मणाम्—कर्मों का; पारम्—सीमा; अपार-कर्मणः—असीम कर्मों वाले का; यत्—जिससे; योग—योगशक्ति; माया—शक्ति; गुण—भौतिक प्रकृति के गुण; योग—योग शक्ति; मोहितम्—मोहग्रस्त; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; समस्तम्—सम्पूर्ण; भगवन्—हे भगवान्; विधेहि—वर दें; शम्—सौभाग्य।

हे प्रभु, आपके अद्भुत कार्यों की कोई सीमा नहीं है। जो भी व्यक्ति आपके कार्यों की सीमा जानना चाहता है, वह निश्चय ही मतिभ्रष्ट है। इस जगत में हर व्यक्ति प्रबल योगशक्तियों से बँधा हुआ है। कृपया इन बद्धजीवों को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान करें।

तात्पर्य : मनोधर्मी चिन्तक (ज्ञानी), जो असीम की सीमा जानना चाहते हैं निश्चय ही, मतिभ्रष्ट हैं। इनमें से हर एक भगवान् की बहिरंगा शक्तियों द्वारा पाशबद्ध है। उनके लिए सबसे अच्छी बात यह है कि वे भगवान् को अचिन्त्य जानकर उनकी शरण में जाँय, क्योंकि उन्हें इस तरह उनकी अहैतुकी कृपा प्राप्त हो सकती है। यह स्तुति उच्चतर लोकों अर्थात् जन, तप तथा सत्य लोकों के निवासियों द्वारा की गई जो मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक बुद्धिमान तथा शक्तिशाली होते हैं।

यहाँ पर विश्वं समस्तम् अत्यन्त सार्थक है। लोक दो तरह के हैं—भौतिक तथा आध्यात्मिक। मुनिगण प्रार्थना करते हैं “दोनों लोक आपकी विभिन्न शक्तियों द्वारा मोहित हैं। जो लोग आध्यात्मिक जगत में हैं, वे अपने को तथा आपको भी भुलाकर आपकी प्रेमाभक्ति में लीन रहते हैं, जबकि भौतिक जगत के लोग इन्द्रियतृप्ति में डूबे रहते हैं, अतएव वे भी आपको भुला देते हैं। कोई भी आपको नहीं जान सकता, क्योंकि आप असीम हैं। सबसे उत्तम यही है कि व्यर्थ के मानसिक चिन्तन द्वारा आपको जानने का प्रयास ही न किया जाय प्रत्युत आप हम सबों को आशीर्वाद दें जिससे हम अहैतुकी भक्ति से आपकी पूजा कर सकें।”

मैत्रेय उवाच

इत्युपस्थीयमानोऽसौ मुनिभिर्ब्रह्मादिभिः ।

सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्तावितावनिम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय मुनि ने कहा; इति—इस प्रकार; उपस्थीयमानः—प्रशंसित होकर; असौ—भगवान् वराह; मुनिभिः—मुनियों द्वारा; ब्रह्मा-वादिभिः—अध्यात्मवादियों द्वारा; सलिले—जल में; स्व-खुर-आक्रान्ते—अपने ही खुरों से स्पर्श हुआ; उपाधत्त—रखा; अविता—पालनकर्ता; अवनिम्—पृथ्वी को।

मैत्रेय मुनि ने कहा : इस तरह समस्त महर्षियों तथा दिव्यात्माओं के द्वारा पूजित होकर भगवान् ने अपने खुरों से पृथ्वी का स्पर्श किया और उसे जल पर रख दिया।

तात्पर्य : भगवान् ने अपनी अचिन्त्य शक्ति से पृथ्वी को जल के ऊपर रखा था। भगवान् सर्वशक्तिमान हैं, अतएव वे विशाल लोकों को चाहें तो जल पर या वायु में स्थिर कर सकते हैं। मनुष्य का लघु मस्तिष्क इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि भगवान् की ये शक्तियाँ किस तरह कार्य करती हैं। मनुष्य उन नियमों की अस्पष्ट सी व्याख्या कर सकता है जिनसे ऐसी घटनाएँ सम्भव होती हैं, किन्तु वास्तव में लघु मानव मस्तिष्क भगवान् के कार्यों के विषय में कल्पना कर सकने में अशक्त है, इसीलिए वे अचिन्त्य कहलाते हैं। किन्तु तो भी कूपमंडूक दार्शनिक कुछ काल्पनिक व्याख्या करने का प्रयास करते हैं।

स इत्थं भगवानुर्वी विष्वक्सेनः प्रजापतिः ।

रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; इत्थम्—इस तरह से; भगवान्—भगवान्; उर्वीम्—पृथ्वी को; विष्वक्सेनः—विष्णु का अन्य नाम; प्रजा-पतिः—जीवों के स्वामी; रसायाः—जल के भीतर से; लीलया—आसानी से; उन्नीताम्—उठाया हुआ; अप्सु—जल में; न्यस्य—रखकर; ययौ—अपने धाम लौट गये; हरिः—भगवान्।

इस प्रकार से समस्त जीवों के पालनहार भगवान् विष्णु ने पृथ्वी को जल के भीतर से उठाया और उसे जल के ऊपर तैराते हुए रखकर वे अपने धाम को लौट गये।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु विशिष्ट प्रयोजनों के लिए अपने असंख्य अवतारों में अपनी इच्छा से भौतिक लोकों में अवतरित होते हैं और पुनः अपने धाम को चले जाते हैं। जब वे अवतरित होते हैं, तो वे *अवतार* कहलाते हैं, क्योंकि *अवतार* का अर्थ है “अवतरित होने वाला।” न तो स्वयं भगवान्, न ही उनके विशिष्ट भक्त जो इस पृथ्वी पर आते हैं, हम जैसे सामान्य जीव होते हैं।

य एवमेतां हरिमेधसो हरेः

कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ।

शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं

जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एवम्—इस प्रकार; एताम्—यह; हरि-मेधसः—भक्त के भौतिक शरीर को विनष्ट करनेवाला; हरेः—भगवान् की; कथाम्—कथा; सु-भद्राम्—मंगलकारी; कथनीय—कहने योग्य; मायिनः—उनकी अन्तरंगा शक्ति द्वारा कृपालु का; शृण्वीत—सुनाता है; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; श्रवयेत—अन्यों को भी सुनाता है; वा—अथवा; अशतीम्—अत्यन्त सुहावना; जनार्दनः—भगवान्; अस्य—उसका; आशु—तुरन्त; हृदि—हृदय के भीतर; प्रसीदति—प्रसन्न हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति भगवान् वराह की इस शुभ एवं वर्णनीय कथा को भक्तिभाव से सुनता है अथवा सुनाता है, तो हर एक के हृदय के भीतर स्थित भगवान् अत्यधिक प्रसन्न होते हैं।

तात्पर्य : भगवान् अपने विविध अवतारों में प्रकट होते हैं, कार्य करते हैं और अपने पीछे वर्णनात्मक इतिहास छोड़ जाते हैं, जो स्वयं भगवान् जितना ही दिव्य है। हममें से हर व्यक्ति कोई न कोई अद्भुत कथा सुनने का इच्छुक रहता है, किन्तु अधिकांश कथाएँ न तो मंगलप्रद होती हैं न सुनने के लायक, क्योंकि वे भौतिक प्रकृति की निम्न गुण वाली हैं। प्रत्येक जीव उत्कृष्ट गुण का अर्थात् आत्मा है और कोई भी भौतिक वस्तु उसके लिए शुभ नहीं हो सकती। इसलिए बुद्धिमान लोगों को भगवान् की विवरणात्मक दृष्टान्त स्वयं सुनने चाहिए और अन्यो को भी सुनने के लिए बाध्य करना चाहिए, क्योंकि इससे संसार का ताप विनष्ट होगा। भगवान् एकमात्र अपनी अहैतुकी कृपा से इस पृथ्वी पर आते हैं और अपने कृपामय कार्यकलापों को पीछे छोड़ते जाते हैं जिससे कि भक्तगण दिव्य लाभ उठा सकें।

तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ

किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ।

अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः

स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उन; प्रसन्ने—प्रसन्न होने पर; सकल-आशिषाम्—सारे आशीर्वादों का; प्रभौ—भगवान् को; किम्—वह क्या है; दुर्लभम्—प्राप्त कर सकना अतीव कठिन; ताभिः—उनके साथ; अलम्—दूर; लव-आत्मभिः—क्षुद्र लाभ सहित; अनन्य-दृष्ट्या—अन्य कुछ से नहीं अपितु भक्ति से; भजताम्—भक्ति में लगे हुआ का; गुहा-आशयः—हृदय के भीतर निवास करने वाले; स्वयम्—स्वयं; विधत्ते—सम्पन्न करता है; स्व-गतिम्—अपने धाम में; परः—परम; पराम्—दिव्य।

जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् किसी पर प्रसन्न होते हैं, तो उसके लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। दिव्य उपलब्धि के द्वारा मनुष्य अन्य प्रत्येक वस्तु को नगण्य मानता है। जो व्यक्ति दिव्य प्रेमाभक्ति में अपने को लगाता है, वह हर व्यक्ति के हृदय में स्थित भगवान् के द्वारा सर्वोच्च सिद्धावस्था तक ऊपर उठा दिया जाता है।

तात्पर्य : जैसाकि भगवद्गीता (१०.१०) में कहा गया है, भगवान् शुद्ध भक्तों को बुद्धि प्रदान करते हैं जिससे वे सर्वोच्च सिद्धि-अवस्था तक ऊपर उठाये जा सकें। यहाँ पर इस बात की पुष्टि की गई है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रेमाभक्ति में निरन्तर लगे रहने वाले शुद्ध भक्त को वह समस्त

ज्ञान प्रदान किया जाता है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तक पहुँचने के लिए आवश्यक है। ऐसे भक्त के लिए भगवान् की सेवा के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त किया जाना मूल्यवान नहीं है। यदि कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक सेवा करता है, तो निराशा की कोई सम्भावना नहीं रहती, क्योंकि भक्त की प्रगति का भार स्वयं भगवान् ले लेते हैं। भगवान् हर एक के हृदय में आसीन हैं और वे भक्त के मन्तव्य को जानते हैं तथा उपलब्ध हो सकने वाली हर वस्तु की व्यवस्था करते हैं। दूसरे शब्दों में, छद्म भक्त, जो कि भौतिक लाभ पाने के लिए उत्सुक रहता है सर्वोच्च सिद्धि-अवस्था इसलिए प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि भगवान् को उसके गन्तव्य की जानकारी रहती है। मनुष्य को अपने उद्देश्य में केवल निष्ठावान बनने की आवश्यकता है। फिर तो भगवान् सभी तरह से उसकी सहायता करने के लिए वहाँ पर मौजूद रहते हैं।

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्

पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ।

आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा-

महो विरज्येत विना नरेतरम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; नाम—निस्सन्देह; लोके—संसार में; पुरुष-अर्थ—जीवन-लक्ष्य; सार-वित्—सार को जानने वाला; पुरा-कथानाम्—सारे विगत इतिहासों में; भगवत्—भगवान् विषयक; कथा-सुधाम्—भगवान् विषयक कथाओं का अमृत; आपीय—पीकर; कर्ण-अञ्जलिभिः—कानों के द्वारा ग्रहण करके; भव-अपहाम्—सारे भौतिक तापों को नष्ट करने वाला; अहो—हाय; विरज्येत—मना कर सकता है; विना—बिना; नर-इतरम्—मनुष्येतर प्राणी। बेइन्।

मनुष्य के अतिरिक्त ऐसा प्राणी कौन है, जो इस जगत में विद्यमान हो और जीवन के चरम लक्ष्य के प्रति रुचि न रखता हो? भला कौन ऐसा है, जो भगवान् के कार्यों से सम्बन्धित उन कथाओं के अमृत से मुख मोड़ सके जो मनुष्य को समस्त भौतिक तापों से उबार सकती हैं?

तात्पर्य : भगवान् के कार्यों की कथा अमृत के सतत प्रवाह के तुल्य है। ऐसे अमृत को पीने से इनकार वही कर सकता है, जो मनुष्य नहीं है। हर मनुष्य के लिए भगवद्भक्ति जीव का सर्वोच्च लक्ष्य है और ऐसा भक्तियोग भगवान् के दिव्य कार्यों को श्रवण करने से शुरू होता है। केवल कोई पशु या ऐसा मनुष्य जो आचरण में पशुप्राय है, भगवान् का सन्देश सुनने में रुचि लेने से इनकार करेगा। संसार में कथाओं तथा इतिहासों के अनेक ग्रन्थ हैं, किन्तु भगवान् की कथाओं के इतिहासों या कथाओं को छोड़कर उनमें से कोई भी भवताप के भार को कम करने में समर्थ नहीं है। अतएव जो व्यक्ति भौतिक

जीवन का निराकरण करना चाहता है उसे भगवान् के दिव्य कार्यों के विषय में कीर्तन तथा श्रवण करना चाहिए। अन्यथा उस मनुष्य की तुलना अमनुष्यों से की जानी चाहिए।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के अन्तर्गत “वराह भगवान् का प्राकट्य” नामक तेरहवें अध्याय के भक्ति वेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।